ISSN PRINT 2319 1775 Online 2320 7876
Research Paper **© 2012 IJFANS. All Rights Reserved** UGC CARE Listed (Group -I) Journal Volume 11, Iss 06, 2022

अथर्ववेद में भैषज्य विज्ञान

डा. विजय नारायण सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर, सत्यवती कालेज,

दिल्ली

सारांश : वेद भारतीय धर्म और संस्कृति के प्रतीकभूत प्राचीनतम ग्रंथ है , जो ज्ञान को प्रकाश द्वारा मानव को निरंतर श्रेष्ठतम पथ को आलोकित करते रहते हैं। वेदों में ज्ञान-विज्ञान, धर्म-दर्शन , सामाजिक - सांस्कृतिक और राजनीतिक जीवन से संबंधित सभी विषय उपलब्ध है , इसीलिए वेदों को मनु स्मृति में समस्त धर्मों का मूल कहा गया है - "वेदोडखिलो धर्ममूलम "।

मान्यता यह है कि प्रारंभ में एक ही वेद था, जिसे महर्षि वेदव्यास ने ज्ञान के अर्जन एवं याज्ञिक अनुष्ठान में सौविध्य को ध्यान में रखते हुए इसे चार भागों में विभक्त किया - ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद।

ऋग्वेद - भाषा भाव और विशेष की दृष्टि से सभी वेदों में प्राचीनतम है, इसका मुख्य विषय देवताओं की स्तुति करना है।

यजुर्वेद _ इसमें यज्ञ संबंधी नियमों का भली-भांति विनियोग किया गया है।

सामवेद -देवों को प्रसन्न करने वाला गान को इस वेद के अंतर्गत रखा गया है।

अपने व्यापक दृष्टिकोण और विषय वस्तु की विविधता के कारण अथर्ववेद अन्य वेदों से अद्ितिय है।

ऋग्वेद ,यजुर्वेद और सामवेद में पारलौकिक जीवन की प्राथमिकता है ,जबकि अथर्ववेद में ऐहिक,सुख-शांति की प्राप्ति , स्वर्गिक प्राप्ति एवं मोक्षिक सिद्धि (ब्रह्म लोक) त्रिविधि कल्याण की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील दिखता है। इसमें धर्म ,अर्थ, काम और मोक्ष रूपी पुरूषार्थ के सभी अंगों और उपांगों का विशद वर्णन है ।अथर्ववेद मे भैषज्य विज्ञान का मूल पर्याप्त रूप से पाया जाता है, इसलिए आर्युविज्ञान के संहिताकारों द्वारा अपना संबंध अथर्ववेद के साथ जोड़ा जाता है। आचार्य चरक की इस संबंध में कहा है - "तत्र चेत प्रष्टार: स्युश्चतुर्णामृक्सामयजुरथर्ववेदानां कं वेदमुपदिशन्त्यायुर्वेदविद: .....तत्र भिषजा पृष्टेनैवं चतुर्णामृक्सामयजुरथर्ववेदानामात्मनोडथर्ववेदे भक्तिरादेश्या...। "- (सूत्र स्थान 30 ।19-20)

मुख्य शब्द:- धर्म,अर्थ, मोक्ष काम ,अभिमंत्रित, अपान वायु

अथर्ववेद 20 काण्डों में विभाजित है, जिसमें 731 सुक्त और सउक्तओ में 5987 मंत्र (करीब 12 सौ मंत्र ऋग्वेद से) संकलित है। इस वेद की मात्र दो शाखाओं पैप्पलाद (प्रश्नोपनिषद) और शौनक (मुंडक, मांडूक्योपनिषद)

Research Paper **© 2012 IJFANS. All Rights Reserved**

उपलब्ध है। अनेकों विशेषताओ के आधार पर अथर्ववेद को विभिन्न नामों से जाना जाता है ,जैसे- अथर्वांगीरस (सर्वाधिक प्राचीन नाम) ,मृग्वङ्गिरस ,मही वेद, क्षेत्र वेद , ब्रह्म वेद तथा भेषज वेद।

ताण्ड्य ब्राह्मण ,शाङ्खायन श्रौत्रसूत्र इत्यादि वैदिक ग्रंथों में अथर्ववेद को भेषज वेद कहा गया है तथा इसके भैषज्य विज्ञान से सम्बद्ध सूक्त "भैषज्यानि" में वृक्ष वनस्पतियों द्वारा जड़ी बूटियों के प्रयोग तथा प्राकृतिक उपचार से विभिन्न रोगों ,जैसे -तक्मन ,गंडमाला ,त्वचा, यक्ष्मा आदि के निवारण की विधियां वर्णित हैं। इसके अंतर्गत अनेकों सूक्त हैं जिसमें अभिमंत्रित औषधीयो, जड़ी-बूटियों ,जल, उष्मा इत्यादि के द्वारा अनेकों प्रकार के रोगों तथा उसके निमित्तभूत राक्षस-पैशाचो तथा देवताओं के प्रकोप के निवारणार्थ अनेक उपायों (झाड़-फूंक, जादू-टोना आदि) को वर्णित किया गया है ,ताकि स्वस्थ एवं दीर्घ जीवन की कामना की जा सके।

"आथर्वणीराडिग्रसीदैवीर्मनुष्यजा उत। ओषध्यः प्र जायन्ते यदा त्वं प्राण जिन्वसि। । "- (अथर्ववेद 4 ।14)

शारीरिक रोगों के लक्षण एवं उपचार - वेदों में रोगों को दो प्रकार से भेदित किया गया है, जैसे- (क) व्याधि - वैसे शारीरिक रोग जो शरीर को संतप्त करता है ,जैसे - त्वक, कफ दोष , गंडमाला अपचित इत्यादि। ऋग्वेद में शारीरिक रोग के लिए अमीबा शब्द का प्रयोग किया गया है। (ख). आधि (आगंतुक रोग) - जो रोग किसी बाहरी आघात से होता है , जैसे- उन्माद , शस्त्र से प्रहार सर्प दंश इत्यादि। ऋग्वेद में आगंतुक रोगों के लिए रक्षस- राक्षस शब्द का प्रयोग किया गया है।अथर्ववेद में समस्त रोगों का कारण अधिक विषय आसक्ति (काम)और दुर्भावना या दूर्विचार (अपकाम) को माना गया है। हृदय में दूर्विचार प्रज्ञापराध के कारण होता है ,जिससे बुद्धि विकृत हो शारीरिक शक्ति क्षीण हो जाती है और अंततः मनुष्य रोगी हो जाता है।

चरक , सुश्रुत और अष्टांगहृदय में वात, पित्त और कफ तीनों का संतुलन ही शरीर का आधार माना गया है। यदि तीनों में से किसी एक में भी असंतुलन होने पर शरीर में अनेकों प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इन तीनों में असंतुलन का कारण आहार-विहार में अनियमितता या अव्यवस्था, प्रज्ञापराध भाव के कारण मनुष्य के बुद्धि में दोष आना (विकृत बुद्धि) को माना गया है।

भैषज्य विज्ञान आठ भागों में विभक्त किया जाता है जो अथर्ववेद में मिलते हैं - शल्य, शालाक्य (ग्रीवा से उपरी भाग की आंतरिक चिकित्सा), काय चिकित्सा (उदर, ज्वर, यक्ष्मा, पक्षाघात आदि), भूतविद्या (यक्ष, पिशाच, असुर, नाग आदि के आवेश से दूषित), कौमारभृत्य (बाल रोग), अगद तंत्र (विष), रसायन तंत्र और वाजीकरण (वीर्य और शक्तिप्राप्त्यर्थ)।

शारीरिक रोगों के उपचार की विधियां - अनेकों प्राकृतिक तरीकों तथा शल्य क्रिया द्वारा शारीरिक और मानसिक रोगों का उपचार करने का वर्णन अथर्ववेद में किया गया है ,जैसे- पृथ्वी ,जल ,अग्नि ,वायु ,सूर्य ,शल्यक्रिया और मनोचिकित्सा उपचार आदि।

ISSN PRINT 2319 1775 Online 2320 7876
Research Paper **© 2012 IJFANS. All Rights Reserved** UGC CARE Listed (Group -I) Journal Volume 11, Iss 06, 2022

1. **जल द्वारा उपचार**-अथर्ववेदानुसार-" अपवन्तरमऋतमप्सु भऐषजंग " (जल में अमृत है तथा जीवनदायिनी शक्ति है) तथा जल चिकित्सा के दृष्टि से सभी रोगों का नाश करने वाली औषधि है। जल् से शरीर को शक्ति मिलती है और रोगों का भी नाश होता है। जल के विविध गुणों का वर्णन अनेक सूक्तों में मिलता है। जल में अग्नि और सोम दोनों तत्व पाया जाता है जो आग्नेय तत्व के द्वारा प्राणशक्ति और सोभीय तत्व के द्वारा तेजस्विता देता है। मनुष्य शरीर का करीब 70% भाग जल ही है , यदि इसमें किसी भी प्रकार का असंतुलन हो तो शरीर रोगी हो जाता है। जल चिकित्सा देवता के रूप में रूद्र (प्रथम दिब्य भिषक) और वरूण को अग्रमी माना गया है। स्थान ,आश्रय आदि के आधार पर जल के गुणों में अंतर पाया जाता है ,जैसे -उत्तम ,मध्यम और अन्य। उत्तम श्रेणी के जल में वर्षा जल (शतवृष्ण्य) , सूर्य की किरणों में रहने वाला जल , हिमालयी नदियों में बहता हुआ जल इत्यादि। शुद्ध जल अमृत एवं रोग नाशक होता है जबकि दूषित जल अनेकों रोगों का कारण भी होता है। जल के विभिन्न तरीकों जैसे -शईत, उष्ण ,मार्जन ,मर्दन ,धारापात आदि द्वारा रोगों का उपचार किया जाता है।

हृदय रोगी को प्रचुर मात्रा में जल का सेवन करना चाहिए खासकर हिमालयी नदियों के पानी।

नेत्र रोग और नेत्र शक्ति बढ़ाने के लिए- प्रातः काल शीतल जल से छींटें मारना , गुलाबी फिटकरी के पानी से आंखें धोना ,औंस पड़ी घासों पर नंगे पांव चलना।

चोट या घाव -अस्त्र या शस्त्र से क्षत स्थान पर शीतल जल की धारा से सेंचन तथा क्षत स्थान को जल में भिगोकर या मोटी कपड़े को शीतल जल से गिला करके पट्टी बांधना चाहिए। हड्डी में चोट या मोच की स्थिति में गर्म पानी में नमक डालकर क्षत स्थान को धोने से सूजन आदि ठीक हो जाता है।

दुस्वप्न - कटिस्नान , सोते समय पैरों को धोना, सोने से पूर्व शीतल जल से स्नान, रात्रि में नाभि पर गिला कपड़ा रखना।

सर्प विष- अधिक जल पिलाकर मुंह में उंगली डाल कर कम तीन चार बार उल्टी करवाना, रोगी को अधिक से अधिक पानी में नहलाना चाहिए।

ज्वर -सामान्य ज्वर में उष्ण जल का पान जबकि पित व विषजन्य ज्वर आदि में शीतल जल का पान कराना चाहिए। यदि ज्वर मे शरीर का ताप अधिक हो तो रोगी के सिर पर शीतल जल की पट्टी रखनी चाहिए।

2. **वायु द्वारा उपचार** (प्राणायाम) -मानव जीवन का आधार वायु (प्राण) है। जब तक शरीर में प्राण रुपी वायु विद्यमान है तभी तक जीवन का अस्तित्व है।इस प्राणशक्ति का संरक्षण और पोषण कर शरीर को व्याधियों से मुक्त रखा जा सकता है।प्राणायाम के द्वारा दो प्रकार की वायु औषधि से रोगों का इलाज किया जाता है - (a).आंतरिक वायु - प्राण, अपान ,व्यान ,उदान और समान (b).बाह्य वायु

Research Paper **© 2012 IJFANS. All Rights Reserved**

प्राणायाम से प्राणो (वायु) की शक्ति का विस्तार होता है ।इसमें श्वास के द्वारा वायु से ऑक्सीजन ग्रहण कर फेफड़ो के द्वारा समस्त कोशिकाओं को शुद्ध वायु पहुंचाना और निश्वास के द्वारा शरीर के अंदर दूषित तत्वो को मल मूत्र के रूप में बाहर निकालकर शरीर को शुद्ध रखना । श्वास को जितना अधिक रोका जाएगा रक्त उतना ही अधिक शुद्ध होगा , जिसके फलस्वरूप शारीरिक शक्ति का संचार और पाचन शक्ति बढ़ती है ।अथर्ववेदानुसार वर्तमान, भूत और भविष्य प्राण शक्ति पर निर्भर है , यदि प्राणशक्ति उत्कृष्ट हो तो निरोग तथा अभाव की स्थिति में रोग देती है । प्राणायाम शरीर के अंदर के सभी दोषो को जलाकर शरीर को शुद्ध करता है । इसीलिए अथर्ववेद में वायु को विश्व भैषज कहां गया है ।मनुष्य को ज्वर का मूल कारण कब्ज को माना गया है जो अपानवायु के द्वारा पेट को साफ कर ठीक किया जा सकता है । सर दर्द से संबंधित रोगी को कुछ दिनों के लिए पर्वतों और शुद्ध हवा लेने की सलाह भी दी गई है ।

3.**उष्मा द्वारा** -इसके अंतर्गत अथर्ववेद में दो प्रकार की पद्धतियों की चर्चा की गई है - (a).सुर्य उष्मा (b).चंद्र उष्मा

सूर्य उष्मा - वेदों में सूर्य को चराचर जगत की आत्मा कहा गया है । सूर्य अपनी किरणों से समस्त शारीरिक रोगों को दूर करता है ।अथर्ववेदानुसार उदय होता सूर्य मृत्यु के सभी कारणों को नष्ट कर देता है क्योंकि उस समय सूर्य से हल्की लाल (अवरक्त) किरणें निकलती है जिसमें रोगों को नष्ट करने की क्षमता होती है । सूर्य की किरणों में सात प्रकार का रंग होता है और इन सभी रंगों में किसी न किसी रोग को ठीक करने की औषधिय गुण है । अथर्ववेद में सूर्य उष्मा चिकित्सा से ठीक होने वाले अनेकों रोगों को वर्णित की गई है, जैसे- हृदय की बीमारी,सिर दर्द, कान दर्द ,रक्त की कमी, पीलिया ,जलोदर,कुष्ठ, छोटी-छोटी गिल्टियां इत्यादि। सूर्य के किरणों का मनुष्य के रूप रंग और आयु के अनुसार लेने की भी निर्देश दी गई है ।इस विधि के अंतर्गत अनेक विधियों द्वारा रोगों का निवारण किया जाता है जैसे शरीर के रूग्ण स्थान पर सीधे सूर्य प्रकाश को लेना ,सूर्य की किरणों से प्रभावित जल , तेल इत्यादि का औषधि रूप में प्रयोग करना इत्यादि ।पीलिया और अनेक हृदय रोगों में उदय होते सूर्य के सम्मुख छाती खुले रखना ,इसके अलावा नारंगी रंग की बोतल में भरे पानी को सूर्य के सामने चार से पांच घंटा रखने के बाद पीना इत्यादि ।

अग्नि -अथर्ववेद के अनुसार सभी ३३ देवों की विशेषताएं अग्नि में समाहित है । इसे तेज ,वर्चस ,ओजस ,दीर्घायु ,बल और यश का कारण बताया गया है । अग्नि ऊष्मा चिकित्सा विधि के अंतर्गत अग्नि के अनेकों प्रकार से प्रयोग की जाती है, जैसे -अग्नि से अंगों को सेकना, अग्नि में रोग नाशक दवा डाल कर, ईंट, पत्थर इत्यादि को गर्म कर प्रभावित अंगो को सेकना इत्यादि । अग्नि से सभी रोगों की इलाज की जा सकती है ,जैसे -

सर्प विष- काटे गए स्थान को लोहे से दागना या जलाना

Research Paper **© 2012 IJFANS. All Rights Reserved**

मानसिक रोग- अग्नि में सुगंधित कपूर, चंदन, तुलसी, इलायची, गूगल, छुहारा, किशमिश, कंदमूल आदि वस्तुओं को डालकर रोगी को सुंघाने से उसके मस्तिष्क में चेतना और स्फूर्ति आती है ।

ज्वर रोग- अग्नि में गूगल डाल कर धुंआ लेना

4. **वानस्पतिक द्वारा उपचार** - **वनस्पतियों में औषधिय गुण होने के कारण अथर्ववेद में इसे भैषज और सुभेषज कहा गया है । मास्क के अनुसार जो शरीर में शक्ति उत्पन्न कर उसे धारण करती है या दोषों को दूर करती है उसे वनस्पति (औषधि) कहते हैं । सामान्यत: बड़े वृक्षों को वनस्पति तथा छोटे पौधे को औषधि कहा जाता है। वेदों में अनेकों वानस्पतिक उपचार विधियों को वर्णित किया गया है ,जैसे -**

(a).कुष्ठ (कूट)- उठे अथर्ववेद में इस बल शालिनी औषधि को अनेक रोगों के लिए औषधीय गुणों के कारण विश्व भैषज कहा गया है ।यह औषधि मुख्यतया हिमालय के उच्च शिखरों में उगती थी ।

(b).अजश्रृंगी - विशिष्ट गंध वाली औषधि होने के कारण इसके गंध से भी अनेकों रोगों का उपचार किया जाता है

©. अपामार्ग (लटजीरा)- सभी प्रकार के शारीरिक रोगों को दूर करने के कारण अथर्ववेद में इस औषधि को अपामार्ग कहा गया है ।अनेकों समस्याओं में उपचार आने के कारण इसे सर्वश्रेष्ठ औषधि माना गया है ,जैसे - राज्यक्षमा ,गवादी पशुओं में संतानों का अभाव, संतान स्तंभन रोग, इंद्रिय दुर्बलता, बवासीर, विष नाशक इत्यादि ।

(d) चीपुद्रु (चीड़) -इसे अनेक रोगों में प्रयोग किया जाता है ,जैसे - सभी प्रकार के चर्म रोग (चीड़ के गोंद से)गिल्टी ,हृदय रोग, रक्तस्राव, नेत्र और गला से संबंधित रोग इत्यादि

(e) .पिपली(पीपल)- अथर्ववेदानुसार इसके सेवन करने वाला कभी रोग ग्रस्त नहीं होता और यह औषधि अकेली जीवनदान के लिए पर्याप्त है । इसका प्रयोग अनेकों रोगों में किया जाता है जैसे - समस्त वात व्याधियों में , उन्माद,श्वास रोग, खांसी, कफ रोग आदि

(f).गुगल-अथर्ववेदानुसार इसकी गंध लेने से यक्ष्मा, ज्वर आदि रोग नहीं होता । इसे सारे दोषों का नाशक भी कहा गया है ,जैसे- पथरी , कुष्ठ, बवासीर, गंडमाला कृमि रोग, चर्म रोग इत्यादि।

(g).पाठा (सुभागा) - सूत की तरह पतली और दृढ़ लता के रूप में पाई जाने वाली इस औषधि का प्रयोग अनेकों रोगों में किया जाता है जैसे बड़े घाव और विषैले शस्त्र घात , हृदय रोग,ज्वर,कोढ, अतिसार, टूटे अंगों को जोड़ने में ,खुजली इत्यादि।

(h).बेल (सिर्फ)- अनेक औषधीय गुण के कारण इसे शिव फल भी कहा जाता है तथा इसकी उत्पत्ति प्रकाश से मानी जाती है। पके हुए बेल का प्रयोग रसायन और रेचक के रूप में प्रयोग की जाती है जिससे अनेकों रोगों को उपचारित किया जाता है, जैसे -बवासीर, कब्ज, खूनी पेचिश (अधपके बेल का क्वाथ) आदि।

Research Paper **© 2012 IJFANS. All Rights Reserved**

(I).आज्जन -इसका सुगंधित वृक्ष मुख्यता शिखरो वाले हिमवान पर्वतो पर मिलता है ।वेद के अनुसार अनेकों रोगों में प्रयोग किया जाता है ,जैसे -नेत्र रोग, पीलिया,कफ रोग,वात रोग आदि ।

(j). अश्वत्थ (पीपल)-अथर्ववेद में इसके फल, बीज और पत्ते में पाए जाने वाले औषधीय गुणों के कारण यज्ञ वृक्ष, देवताओं का निवास स्थान तथा शत्रु नाशक कहां गया है। इसे अनेकों रोगों में प्रयोग किया जाता है, जैसे -उन्माद रोग (इसके लकड़ी से हवन), रक्त विकार,पित कफ व्रत,रक्त रोध तथा वेदना शामक (इसके दूध से) घाव (पत्ते का लेप)आदि ।

5- **शल्यक्रिया द्वारा उपचार** - वेदों में अनेकों रोगों जैसे पथरी मूढगर्भ, अपचित, मूत्रकृच्छ आदि के लिए शल्यक्रिया का वर्णन किया गया है तथा प्रमुख चिकित्सक के रूप मे अश्विनी कुमारों और इंद्र को माना गया है । अश्विनी कुमारों द्वारा किए गए अनेको आश्चर्यजनक शल्यक्रिया का वर्णन है ,जैसे - श्याव ऋषि के शरीर के कटे हुए 3 टुकड़े को जोड़ना, रेभ ऋषि का छिन्न-भिन्न अंगों को जोड़ना, हसली की टूटी हड्डियों को बिना प्लास्टर का जोड़ना (इंद्र द्वारा)आदि । पौरूष ग्रंथि बढ़ने से मूत्र रुकने के चलते पौरुष ग्रंथि को काटना, मूत्राघात रोग में सर तथा शलाका को मूत्र मार्ग में प्रविष्ट करा के मूत्र निकालना, प्रसव तथा विकृत प्रसव के लिए शस्त्र द्वारा योनि भेदन कर गर्भस्थ शिशु को बाहर निकालना (प्रथम कांड के 11वे सूक्त) गंडमाला को मुनि वृक्ष के सालाका से भेदन करना,बवासीर के तथा मल मार्ग के मस्से को काटना आदि जैसी शल्य चिकित्सा में इन बातों का ध्यान रखा जाता था कि नस नाड़ियों और हड्डियां ठीक प्रकार से बैठ जाए।

6. **मनो चिकित्सा विज्ञान** - मनुष्य के सभी रोगों का आश्रय शरीर और मन होता है। शरीर के सभी क्रियाएं चाहे वह ऐच्छिक, अनैच्छिक, प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष हो पर पूरी नियंत्रण मन का हीं होता है । किसी मनुष्य के रज, तम और सत्व गुण जब संतुलन में होता है तो उसका मन भी संतुलित होता है लेकिन जब सत्व गुणों का क्षरण होता है तो रज और तम गुण प्रबल होकर मनुष्य को उद्विग्न कर देता है, फलत वह काम, क्रोध और ईर्ष्या आदि में लीन होकर अनेको विभत्स क्रिया करने लगता है जो शारीरिक उत्तेजना, बेचैनी, हताशा, उदासी और अवसाद जैसे मनो रोगों के रूप में दिखाई देता है। सुश्रुत ने मनो रोगों का मुख्य कारण निर्धारित मर्यादा का उल्लंघन तथा चरक ने प्रज्ञा अपराध को माना है, जबकि आधुनिक के समीक्षकों ने वंशानुगत, मानसिक और शारीरिक कारण को मानते है ।

अथर्ववेद में अपस्मार (मिर्गी या हिस्टीरिया) और उन्माद (पागलपन या मनो विक्षिप्त) नमक दो प्रकार के मनो रोगों को वर्णित किया गया है ।

अपस्मार -वात नाड़ी संस्थान स्नायु मंडल से संबंधित स्मृति का नाश करने वाले इस रोग में मनुष्य एकाएक बेहोश होकर उसके शरीर में कंपन, मुख से फैन का निकलना और हस्त, पाद तथा मुख से विभत्स चेष्टाएं करने लगता है। जब रोगी होश में आता है तो सोने के बाद जिस प्रकार व्यक्ति जगता है उसी प्रकार उसे पूर्ण ज्ञान हो

Research Paper **© 2012 IJFANS. All Rights Reserved**

जाता है ।आधुनिक चिकित्सा शास्त्री इस रोग का कारण शरीर के सम्वर्त क्रिया से रक्त में एक विशेष प्रकार का विष (कोलिंन) का उत्पन्न होना मानते हैं ।इसके अलावा अनेकों ज्ञात (हृदय ,रक्त वाहिनी, मस्तिष्क रोग एवं विषमता) और अज्ञात (मानसिक)कारणों को भी माना जाता है ।

उपचार- दक्ष वृक्ष (10 मूल -विल्व,पृश्नीपर्णी, शालपर्णी आदि) का सेवन

न्यस्तिका(शंखपुष्पी) हजारों पत्तों वाली औषधि जिसकी मूल की शाखाएं 33 तथा फैलाव सहस्रों में होता है ।

पुराना घी

शीग्रवादी तैल, पलंगषादी तैल

नस्य विधि -कपिल रंग की गाय का मूत्र, कुत्ता, बिल्ली, सिंह इत्यादि का मूत्र ।

उन्माद - सामान्यत: मन, बुद्धि और स्मृति के विभ्रम से इस रोग की उत्पत्ति होती है जिससे रोगी देखते और सुनते हुए भी उसके आधार तत्वों को ग्रहण करने में असमर्थ हो जाता है तथा उसे अपना स्वरूप का बिल्कुल भी ज्ञान नहीं रहता है। उन्माद व्याधि से ग्रसित ब्यर्थ प्रलाप करता हुआ बड़बड़ाता रहता है तथा अपने विवेक से रहित हो जाता है । चरक और सुश्रुत ने वित्त,पित्त,कब्ज एवं सन्निपात के आधार पर इस रोग का लक्षण और इसके वेग की काल की अवधि अलग-अलग बताया है ।

उपचार -अग्नि में सुगंधित कपूर ,चंदन, तुलसी, इलायची, केसर, गूगल सहित पोस्टिक कंदमूल छुहारा, किसमिस तथा गिलोय औषधि डालकर उसका धुआं सुंघाना

पंचकर्म क्रिया (चरक के अनुसार)

भयविस्मापन चिकित्सा(विविध पदार्थों से दिखाना, उसके मन मस्तिष्क पर आघात करने वाले खबर देना, शारीरिक पीड़ा देना) त्रासन,ताड़न,तर्जन आदि चिकित्सा विधि

पुराने घी -अथर्ववेदानुसार 100 वर्ष तक रखे गए घृत का सेवन (देखने,छुने,नस्य लेना आदि) से अपस्मार और उन्माद रोग विनष्ट हो जाता है।

मंत्रों द्वारा दी गई चिकित्सा ,आश्वासन चिकित्सा तथा संकल्प चिकित्सा

सर्पगंधा चूर्ण का काली मिर्च के साथ सेवन

आधुनिक चिकित्सा पद्धति में अनेको मनो विक्षिप्त विरोधी औषधियों ,जैसे -क्लोर प्रोमाजिन आदि के द्वारा डोपामाइन और न्यूरो ट्रांसमीटर की बढ़ी हुई क्रियाओं को कम कर रोगी की उन्माद सामान्य कर किया जाता है ।

7.**सर्प दंश**- अथर्ववेद में सड़कों का निवास तथा वर्ण के आधार पर 18 जातियों में विभेदित की गई है, जिसमें कुछ सर्प अत्यंत महा विष वाले, कुछ कम विष वाले तथा कुछ निर्विष है। आचार्य चरक ने सर्प के तीन प्रकार की जातियों को माना है- दर्विकार(जिसमें फण,मस्तिष्क और शरीर पर चक्र एवं स्वास्तिक के चिन्ह होते हैं),

ISSN PRINT 2319 1775 Online 2320 7876
Research Paper **© 2012 IJFANS. All Rights Reserved** UGC CARE Listed (Group -I) Journal Volume 11, Iss 06, 2022

मंडली(गोलाकार एवं मंडल के आकार का फण) तथा राजिमान (शरीर में विंदू की रेखाएं जिससे सारा अंग चिन्हित होता है)। दर्विकार सर्प के काटने से वात ,मंडली सर्प के काटने से पित्त तथा राजीमान के काटने से कफ का प्रकोप होता है ।अथर्व वेदा अनुसार सर्प के काटने पर मनुष्य अपने अंगों को को टेढ़ा मेढ़ा कर अनेकों प्रकार की शारीरिक चेष्टा करता है और शरीर में कंपन हो मुख से फैन निकालने लगता है और पूरा शरीर काला पड़ जाता है । चरक ने सर्प के जाति तथा लिंग के आधार पर मनुष्य पर विष का लक्षण में भिन्नता के बारे में वर्णन किया है।अथर्ववेद में सर्प विष को दूर करने के लिए अनेकों उपाय बताए गए हैं जैसे अरिष्ठा बंधन (दंश स्थान से चार अंगुल ऊपर रस्सी बांधना), मंत्र शक्ति (आधुनिक झाड़-फूंक),रक्तभोक्षण(दंशित स्थान से रक्त निकालना, मुंह में जौ के आटा लेकर चूसना, काटकर दूषित खून निकालना या उस स्थान को लोहे से जलाना)

मिट्टी उपचार - जमीन में गड्ढा खोदकर खड़े कर गले तक मिट्टी भरना

जल उपचार

वनस्पति उपचार के तहत अनेकों औषधि का प्रयोग का वर्णन अथर्ववेद में की गई है, जैसे -ताबूब,तस्सुव (कड़वा लौकी, उल्टी कराने के लिए)

श्वेत करवीर (अश्वक्षउरक,आक या मदार) जड़ तथा फल को पानी में पीसकर पिलाना

अरंघुष और पैदव(सफेद आक)

कुमारीका, अपराजिता, विरुत, वरुणावती, धतूरा,तौंदी,आश्वार(किस नाशक तृण),परूष वार(मुंज)

अन्य रोग -

त्वचा रोग (चर्म रोग)- यह रोग शरीर के बाहरी त्वचा पर उत्पन्न तथा प्रभावकारी होता है ,जैसे -कुष्ठ ,अर्श,खाज,विसर्प,त्वचा में श्वेत चकतेदार दाग, उपयुक्त लाल रंग की छोटी-छोटी फुंसियां । वेद में कुष्ठ का कारण अनियमित आहार विहार, कुकर्म, रोगी के साथ भोजन आदि, मांस भेद अस्थि आदि धातुओं का दूषित होना ।चरक संहिता में इसका कारण त्रिदोष को माना गया है ,जैसे- रक्तदोष के कारण लाल रंग का कुष्ठ, मेद में दोष का कारण श्वेत वर्ण का कुष्ठ तथा मांस में दोष के कारण ताम्रवर्ण का कुष्ठ। सुश्रुत संहिता में इसका कारण ब्राम्हण, स्त्री तथा सज्जन पुरुषों की हत्या और अनेकों पाप कर्म, अनियमित आहार -ब्यवहार (जलीय प्राणियों के मांस को दूध के साथ सेवन करना, धूप या ब्यायाम से तप्त शरीर का ठंडे पानी में प्रविष्ट होना, वमन के वेग को रोकना इत्यादि)। इससे मनुष्य की बढ़ी हुई वायु पित्त और कफ के साथ शिराओं को प्रभावित कर शरीर में हुआ हमारे रक्त लसीका त्वचा और मांस को घेर उस स्थान पर चकत्ते पैदा करते हैं और सुश्रुत ने कुष्ठ के 18 प्रकार बताए हैं इसके लक्षण हैं कुष्ठ के रक्त में होने से त्वचा में सुन्नता आदि।

ISSN PRINT 2319 1775 Online 2320 7876
Research Paper **© 2012 IJFANS. All Rights Reserved** UGC CARE Listed (Group -I) Journal Volume 11, Iss 06, 2022

कास दोष- कफ दोष से उत्पन्न रोग को चरक संहिता में कास कहां गया है ,इसके अनेको कारण सुश्रुत संहिता में बताया गया है जैसे धूम तथा धूल कण को मुख, नासिका तथा गले में प्रवेश, आधारणीय वेगो को धारण करने से ।

सुश्रुत और चरक ने वात, पित्त, कफ, क्षयज तथा क्षतज के आधार पर पांच प्रकार के कास रोग को माना है ।इसकी उपेक्षा करने से क्षय रोग (बलास रोग) में परिवर्तित हो जाता है।

कास रोगी के लक्षण- वातज कास- रोगी के हृदय, मस्तिष्क, उदर मे सूल, गले का स्वर और शारीरिक क्षमता में कमी, निरंतर अंत: कफ(वक्ष प्रदेश, फेफड़ा)

पित्तज और कफज- छाती में दाह,ज्वर, स्वाद में तीखापन, पित के साथ पीले रंग का वमन, शरीर पांडू वर्ण का होना, सर दर्द, खांसना और गाढे कफ निकालना

क्षतज - प्रारंभ में सूखी खांसी तथा बाद में रक्त मिश्रित कफ,कंठ प्रदेश में दर्द

क्षयज-अंगों में शूल,ज्वर, धीरे-धीरे शरीर निर्बल होना खांसी के समय हृदय में दर्द तथा रक्त आना

अथर्ववेद में कास के लिए तीन प्रकार की उपचार वर्णित मानस (मनोबल द्वारा कफ निकालना),पार्थिव (मिट्टी के क्षार से)तथा समुद्री (समुद्री फैन से)

औषधि - पिपली (पीपल), मुलहठी,,बहेड़ा आदि

बलास(कफज हृदय रोग)-इसकी उत्पत्ति का मूल कारण कासरोग है ,जिसमें शरीर के विभिन्न अंगों जैसे- हृदय, कक्षद्वय (दोनों कांख), अंडकोष, अस्थि आदि में छोटी गिल्लटिया निकल आती है। इसकी औषधि के रूप में चीपुद्रु,तेज़ (बांस का वंशलोचन), जांगिड (अर्जुन वृक्ष)और अंजन ।

गंडमाला (घेंघा, कण्ठमाला)-गले आदि में छोटी-छोटी गिल्लटिया आ जाती है जो बाद में क्षय रोग में परिवर्तित हो जाती है ।यह गले में थायराइड ,अधिक पसीने आना ,खुजली होना और दुर्गंधित पूय का निकलना ।मांस धातु में दोष होने से मोटापा, भूखशोध, शरीर पर पिंडकोत्पति ,हुई चुभोने सी पीड़ा ,त्वचा में दरारे आना मेद धातु में होने से शरीर में दुर्गंध वृद्धि ,कीड़े पड़ना इत्यादि

कुष्ठ रोगों की औषधि के रूप में अनेकों औषधियों को वर्णित की गई है जैसे नक्तम(कलिहारी,करने),रामा(भृंगराज),कृष्णा, श्यामा, रजनी,अर्क,दूर्वा,शतवआर,अंजन , आसुरी (लाल सरसों)आदि। अष्टांग हृदय के अनुसार रोगी को व्रत, उपवास, जप तथा सूर्य किरण चिकित्सा प्रात: काल सूर्य विमुख होकर आधा घंटा सूर्य के सामने बैठना तथा "आरोग्यं भास्कराद इच्छेत" मंत्र का उच्चारण करना चाहिए।

अन्य त्वचा संबंधित समस्याएं

अर्क -इसका पता ,फूल और दूध खाज खुजली जैसे चर्म रोगों के लिए

ISSN PRINT 2319 1775 Online 2320 7876
Research Paper **© 2012 IJFANS. All Rights Reserved** UGC CARE Listed (Group -I) Journal Volume 11, Iss 06, 2022

दुर्व्वा- त्वचा के सभी रोगों के लिए

सतवार- कुष्ठ, खुजली का नाशक

पथरी (अश्मरी)- **सभी पथरी का आधार कफ को माना गया है । सुश्रुत के अनुसार प्रारंभिक अवस्था में यह औषधि से परंतु बढ जाने पर शल्य चिकित्सा से ही ठीक होती है**

औषधि -पितु दारू (देवदारू) की छाल का क्वाथ

वरुण- इसकी छाल 100 ग्राम को उसके चौगुनी पानी में उबालकर पीना

सहजन का जड़ का काढ़ा बनाकर

नारियल के फूल को क्षार के साथ पानी में पीसकर पीना

पीलिया (पाण्डु)रोग -**पीड़ित व्यक्ति का शरीर ,नेत्र,मूत्र,नख आदि पीला हो जाता है ।अथर्ववेद में पांडु रोग को तीन प्रकार की उपचार वर्णित है -सूर्य किरण ,गो दुग्ध(लाल गाय का)और औषधि (मूलेठी क्वाथ, पुनर्नवा आदि)**

- **विभिन्न प्रकार के तक्मन(ज्वर)-अथर्ववेद में ऋतु परिवर्तन के आधार पर ज्वर को विभाजित की गई है जैसे शरद ऋतु का, ग्रीष्म ऋतु का तथा वर्षा ऋतु का कुछ ज्वर दैनिक, कुछ दिनों के अंतराल पर भी आते हैं।**

उत्पत्ति का कारण -आहार- बिहार में अनियमितता,भूख से अधिक खाना, अस्वच्छता , कब्ज, गंदे जल का सेवन। अथर्ववेद में ज्वर का स्थान घास वाला स्थान, वर्षा वाला स्थान और जंगल जहां सूर्य की किरणें तथा शुद्ध वायु नहीं पहुंच पाती को माना गया है तथा इसके चिकित्सा के लिए जल चिकित्सा, सूर्य चिकित्सा तथा वायु चिकित्सा को वर्णित किया गया है इसके अलावा अनेकों प्रकार की औषधियां जैसे-जैसे(हिमालय के ऊंचे पर्वतों पर मिलती है),जंगिड,यज्ञ और समिधा आदि।

सभी वेदों में आयुर्वेद से संबंधित कुछ न कुछ ज्ञान की जानकारी होती है जबकि अथर्ववेद में विभिन्न रोगों का उपचार रोगों से शरीर की रक्षा करना और आयु वृद्धि का ज्ञान विशेष रूप से वर्णित की गई है, साथ ही इससे संबंधित अनेकों उपचारों ,उनके गुण शरीर के अंगों सहित अनेकों चिकित्सा पद्धतियों का ज्ञान मिलता है अथर्ववेद को इन विशेषताओं के कारण आयुर्वेद का मूल आधार माना जा सकता है । आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति आयुर्वेद ग्रंथों में या अन्य आधुनिक चिकित्सा जगत में कुछ परिवर्तन के साथ प्रयोग की जा रही है।

References :-

1. **आचार्य ज्योतिर्मित्य, चरक एवं सुश्रुत संहिता का दार्शनिक अध्ययन, वैद्यनाथ, 1978**
2. **ब्रहमामुनि परिव्राजक स्वामी, अथर्ववदीय चिकित्सा शास्त्र, दयानन्द संस्थान, दिल्ली, 2006**
3. **दास भगवान, शर्मा आर.के.,चरक संहिता, चौखंभा संस्कृत सीरीज औफिस,वाराणसी 2008**

ISSN PRINT 2319 1775 Online 2320 7876
Research Paper **© 2012 IJFANS. All Rights Reserved** **UGC CARE Listed (Group -I) Journal Volume 11, Iss 06, 2022**

4. **प्रसाद पी.वी, अथर्ववेद एंड इट्स मैटेरियल मेडिकल, इंडियन इंस्टीट्यूट हिस्ट्री मेडिकल, हैदराबाद 2000**
5. **मौरिस ब्लूमफील्ड, द अथर्ववेद, हार्वर्ड विश्वविद्यालय प्रेस**
6. **राल्फ ग्रिफीथ, द द हाईमन आऑफ द अथर्ववेद, वोल्युम-2, दितीय संस्करण, ईमेल लावारिस,पृष्ठ 321-451**